श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

ऋषभ गीता द्वितीय अध्याय(भा॰म॰5.2)

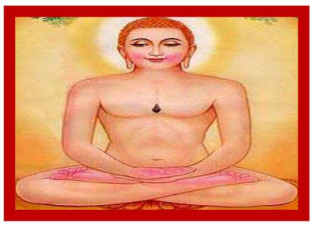

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
पञ्चम स्कन्धः
॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

श्रीशुक उवाच
एवं(म्) पितरि सम्प्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान
आग्नीध्रो जम्बूद्वीपौकसः(फ्) प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाणः(फ्) पर्यगोपायत् ॥ 1॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—पिता प्रियव्रतके इस प्रकार तपस्यामें संलग्न हो जानेपर राजा आग्नीध्र उनकी आज्ञाका अनुसरण करते हुए जम्बूद्वीपकी प्रजाका धर्मानुसार पुत्रवत् पालन करने लगे ।

स च कदाचित्पितृलोककामः(स्) सुरवरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां(म्)
भगवन्तं(वँ) विश्वसृजां(म्) पतिमाभृतपरिचर्योपकरण
आत्मैकाग्र्येण तपस्व्याराधयाम्बभूव ॥ 2॥

एक बार वे पितृलोककी कामनासे सत्पुत्रप्राप्तिके लिये पूजाकी सब सामग्री जुटाकर सुरसुन्दरियोंके क्रीडास्थल मन्दराचलकी एक घाटीमें गये और तपस्यामें तत्पर होकर एकाग्र चित्तसे प्रजापतियों के पति श्रीब्रह्माजीकी आराधना करने लगे ।

तदुपलभ्य भगवानादिपुरुषः(स्) सदसि गायन्तीं(म्)

पूर्वचित्तिं(न्) नामाप्सरसमभियापयामास ॥ 3॥

आदिदेव भगवान् ब्रह्माजीने उनकी अभिलाषा जान ली। अतः अपनी सभाकी गायिका पूर्वचित्ति नामकी अप्सराको उनके पास भेज दिया ।

सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं(वँ) विविधनिबिडविटपि-

विटपनिकरसं(म्)श्लिष्टपुरटलतारूढस्थलविहङ्गमिथुनैः

प्रोच्यमानश्रुतिभिः(फ्) प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डव-

कलहं(म्)सादिभिर्विचित्रमुपकूजितामलजलाशयकमलाकरमुपबभ्राम ॥ 4॥

आग्नीध्रजीके आश्रम के पास एक अति रमणीय उपवन था। वह अप्सरा उसीमें विचरने लगी। उस उपवनमें तरह-तरहके सघन तरुवरोंकी शाखाओंपर स्वर्णलताएँ फैली हुई थीं। उनपर बैठे हुए मयूरादि कई प्रकारके स्थलचारी पक्षियों के जोड़े सुमधुर बोली बोल रहे थे। उनकी षड्जादि स्वरयुक्त ध्वनि सुनकर सचेत हुए जलकुक्कुट, कारण्डव एवं कलहंस आदि जलपक्षी भाँति-भाँति से कूजने लगते थे। इससे वहाँ के कमलवनसे सुशोभित निर्मल सरोवर गूँजने लगते थे ।

तस्याः(स्) सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं(ङ्)

खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य

नरदेवकुमारः(स्) समाधियोगेनामीलितनयननलिनमुकुल-

युगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट ॥ 5॥

तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं(न्)

दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुघैर्गतिविहारव्रीडा-

विनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां(ङ्) कुसुमायुधस्य

विदधतीं(वँ) विवरं(न्) निजमुखविगलितामृतासवसहास-

भाषणामोदमदान्धमधुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन

वल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबरभाररशनां(न्) देवीं(न्) तदवलोकनेन

विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥ 6॥

पूर्वचित्तिकी विलासपूर्ण सुललित गतिबिधि और पाद विन्यासकी शैलीसे पद-पदपर उसके चरणनूपुरों की झनकार हो उठती थी उसकी मनोहर ध्वनि सुनकर राजकुमार आग्नीध्रने समाधियोगद्वारा मूँदे हुए अपने कमल-कलीके समान सुन्दर नेत्रोंको कुछ-कुछ खोलकर देखा तो पास ही उन्हें वह अप्सरा दिखायी दी। वह भ्रमरीके समान एक एक फूलके पास जाकर उसे सूँघती थी तथा देवता और मनुष्योंके मन और नयनोंको आह्लादित करनेवाली अपनी विलासपूर्ण गति, क्रीडा-चापल्य, लज्जा एवं विनययुक्त चितवन, सुमधुर वाणी तथा मनोहर अङ्गावयवोंसे पुरुषोंके हृदयमें कामदेवके प्रवेशके लिये द्वार-सा बना देती थी। जब वह हँस-हँसकर बोलने लगती, तब ऐसा प्रतीत होता मानो उसके मुखसे अमृतमय मादक मधु झर रहा है। उसके निःश्वासके गन्धसे मदान्ध होकर भौंरे उसके मुख कमलको घेर लेते, तब वह उनसे बचने के लिये जल्दी-जल्दी पैर उठाकर चलती तो उसके कुचकलश, वेणी और करधनी हिलनेसे बड़े ही सुहावने लगते। यह सब देखनेसे भगवान् कामदेवको आग्नीध्रके हृदयमें प्रवेश करनेका अवसर मिल गया और वे उनके अधीन होकर उसे प्रसन्न करनेके लिये पागलकी भाँति इस प्रकार कहने लगे।

का त्वं(ञ्) चिकीर्षसि च किं(म्) मुनिवर्य शैले,

मायासि कापि भगवत्परदेवतायाः ।

विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे,

किं(वँ) वा मृगान् मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥ 7॥

मुनिवर्य ! तुम कौन हो, इस पर्वतपर तुम क्या करना चाहते हो ? तुम परमपुरुष श्रीनारायणकी कोई माया तो नहीं हो ? [भौंहोंकी ओर संकेत करके-] सखे! तुमने ये बिना डोरीके दो धनुष क्यों धारण कर रखे हैं? क्या इनसे तुम्हारा कोई अपना प्रयोजन है अथवा इस संसारारण्यमें मुझ -जैसे मतवाले मृगोंका शिकार करना चाहते हो !

बाणाविमौ भगवतः(श्) शतपत्रपत्रौ,

शान्तावपुङ्खरुचिरावतितिग्मदन्तौ ।

कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन् न विद्मः(ह्),

क्षेमाय नो जडधियां(न्) तव विक्रमोऽस्तु ॥ 8॥

[कटाक्षोंको लक्ष्य करके-] तुम्हारे ये दो बाण तो बड़े सुन्दर और पैने हैं। अहो! इनके कमलदलके पंख हैं, देखनेमें बड़े शान्त हैं और हैं भी पंखहीन। यहाँ वनमें विचरते हुए तुम इन्हें किसपर छोड़ना चाहते हो ? यहाँ तुम्हारा कोई सामना करनेवाला नहीं दिखायी देता। तुम्हारा यह पराक्रम हम- जैसे जडबुद्धियोंक लिये कल्याणकारी हो ।

शिष्या इमे भगवतः(फ्) परितः(फ्) पठन्ति,

गायन्ति साम सरहस्यमजस्रमीशम् ।

युष्मच्छिखाविलुलिताः(स्) सुमनोऽभिवृष्टीः(स्),

सर्वे भजन्त्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥ 9॥

[भौंरोंकी ओर देखकर-] भगवन् ! तुम्हारे चारों ओर जो ये शिष्यगण अध्ययन कर रहे हैं, वे तो निरन्तर रहस्ययुक्त सामगान करते हुए मानो भगवान् की स्तुति कर रहे हैं और ऋषिगण जैसे वेदकी शाखाओंका अनुसरण करते हैं, उसी प्रकार ये सब तुम्हारी चोटीसे झड़े हुए पुष्पोंका सेवन कर रहे हैं।

वाचं(म्) परं(ञ्) चरणपञ्जरतित्तिरीणां(म्),

ब्रह्मन्नरूपमुखरां(म्) शृणवाम तुभ्यम् ।

लब्धा कदम्बरुचिरङ्कविटङ्कबिम्बे,

यस्यामलातपरिधिः(ख्) क्व च वल्कलं(न्) ते ॥ 10॥

[नूपुरोंके शब्दकी ओर संकेत करके-] ब्रह्मन् ! तुम्हारे चरणरूप पिंजड़ोंमें जो तीतर बन्द हैं, उनका शब्द तो सुनायी देता है; परन्तु रूप देखनेमें नहीं आता। [करधनीसहित पीली साड़ीमें अंगकी कान्तिकी उत्प्रेक्षा कर-] तुम्हारे नितम्बोंपर यह कदम्ब कुसुमोंकी-सी आभा कहाँसे आ गयी ? इनके ऊपर तो अंगारोंका मण्डल-सा भी दिखायी देता है। किन्तु तुम्हारा वल्कल-वस्त्र कहाँ है ?

किं(म्) सम्भृतं(म्) रुचिरयोर्द्विज शृङ्गयोस्ते,

मध्ये कृशो वहसि यत्र दृशिः(श्) श्रिता मे ।

पङ्कोऽरुणः(स्) सुरभिरात्मविषाण ईदृग् ,

येनाश्रमं(म्) सुभग मे सुरभीकरोषि ॥ 11॥

[कुंकुममण्डित कुचोंको ओर लक्ष्य करके-] द्विजवर ! तुम्हारे इन दोनों सुन्दर सींगोंमें क्या भरा हुआ है ? अवश्य ही इनमें बड़े अमूल्य रत्न भरे हैं, इसीसे तो तुम्हारा मध्यभाग इतना कृश होनेपर भी तुम इनका बोझ ढो रहे हो। यहाँ जाकर तो मेरी दृष्टि भी मानो अटक गयी है। और सुभग! इन सींगोंपर तुमने यह लाल-लाल लेप-सा क्या लगा रखा है ? इसकी गन्धसे तो मेरा सारा आश्रम महक उठा है।

लोकं(म्) प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं(म्) मे,

यत्रेत्य इत्थमुरसावयवावपूर्वी ।

अस्मद्विधस्य मन उन्नयनौ बिभर्ति,

बह्वद्भुतं(म्) सरसराससुधादि वक्त्रे ॥ 12॥

मित्रवर! मुझे तो तुम अपना देश दिखा दो, जहाँके निवासी अपने वक्षःस्थलपर ऐसे अद्भुत अवयव धारण करते हैं, जिन्होंने हमारे- जैसे प्राणियोंके चित्तोंको क्षुब्ध कर दिया है तथा मुखमें विचित्र हाव-भाव, सरसभाषण और अधरामृत- जैसी अनूठी वस्तुएँ रखते हैं ।

का वाऽऽत्मवृत्तिरदनाद्धविरङ्ग वाति,

विष्णोः(ख) कलास्यनिमिषोन्मकरौ च कर्णौ ।

उद्विग्नमीनयुगलं(न्) द्विजपङ्क्तिशोचि-

रासन्नभृङ्गनिकरं(म्) सर इन्मुखं(न्) ते ॥ 13॥

'प्रियवर! तुम्हारा भोजन क्या है, जिसके खानेसे तुम्हारे मुखसे हवनसामग्रीकी-सी सुगन्ध फैल रही है ? मालूम होता है, तुम कोई विष्णुभगवान्‌की कला ही हो; इसीलिये तुम्हारे कानोंमें कभी पलक न मारनेवाले मकरके आकारके दो कुण्डल हैं। तुम्हारा मुख एक सुन्दर सरोवरके समान है। उसमें तुम्हारे चञ्चल नेत्र भयसे काँपती हुई दो मछलियोंके समान, दन्तपंक्ति हंसोंके समान और घुँघराली अलकावली भौंरोंके समान शोभायमान है।

योऽसौ त्वया करसरोजहतः(फ्) पतङ्गो,

दिक्षु भ्रमन् भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे

मुक्तं(न्) न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं(ङ्),

कष्टोऽनिलो हरति लम्पट एष नीवीम् ॥ 14॥

तुम जब अपने करकमलोंसे थपकी मारकर इस गेंदको उछालते हो, तब यह दिशा-विदिशाओंमें जाती हुई मेरे नेत्रोंको तो चंचल कर ही देती है, साथ-साथ मेरे मनमें भी खलबली पैदा कर देती है। तुम्हारा बाँका जटाजूट खुल गया है, तुम इसे सँभालते नहीं ? अरे, यह धूर्त वायु कैसा दुष्ट है जो बार-बार तुम्हारे नीवी- वस्त्रको उड़ा देता है ।

रूपं(न्) तपोधन तपश्चरतां(न्) तपोघ्नं(म्),

ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम् ।

चर्तुं(न्) तपोऽर्हसि मया सह मित्र महां(ङ्),

किं(वँ) वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥ 15॥

तपोधन ! तपस्वियोंके तपको भ्रष्ट करनेवाला यह अनूप रूप तुमने किस तपके प्रभावसे पाया है ? मित्र! आओ, कुछ दिन मेरे साथ रहकर तपस्या करो। अथवा, कहीं विश्वविस्तारकी इच्छासे ब्रह्माजीने ही तो मुझपर कृपा नहीं की है ।

न त्वां(न्) त्यजामि दयितं(न्) द्विजदेवदत्तं(यँ),

यस्मिन् मनो दृगपि नो न वियाति लग्नम् ।

मां(ञ्) चारुशृङ्ग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं(न्) ते,

चित्तं(यँ) यतः(फ्) प्रतिसरन्तु शिवाः(स्) सचिव्यः ॥ 16॥

सचमुच, तुम ब्रह्माजीकी ही प्यारी देन हो; अब मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। तुममें तो मेरे मन और नयन ऐसे उलझ गये हैं कि अन्यत्र जाना ही नहीं चाहते। सुन्दर सींगोंवाली ! तुम्हारा जहाँ मन हो, मुझे भी वहीं ले चलो; मैं तो तुम्हारा अनुचर हूँ और तुम्हारी ये मंगलमयी सखियाँ भी हमारे ही साथ रहें'।

श्रीशुक उवाच

इति ललनानुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया

परिभाषया तां(वँ) विबुधवधूं(वँ) विबुधमतिरधिसभाजयामास ॥ 17॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं-राजन् ! आग्नीध्र देवताओंके समान बुद्धिमान् और स्त्रियों को प्रसन्न करनेमें बड़े कुशल थे। उन्होंने इसी प्रकारकी रतिचातुर्यमयी मीठी-मीठी बातोसे उस अप्सराको प्रसन्न कर लिया ।

सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयः(श्)

श्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुत-

परिवत्सरोपलक्षणं(ङ्) कालं(ञ्) जम्बूद्वीपपतिना

भौमस्वर्गभोगान् बुभुजे ॥ 18॥

वीर- समाजमें अग्रगण्य आग्नीध्रकी बुद्धि, शील, रूप, अवस्था, लक्ष्मी और उदारतासे आकर्षित होकर वह उन जम्बूद्वीपाधिपतिके साथ कई हजार वर्षोंतक पृथ्वी और स्वर्गके भोग भोगती रही ।

तस्यामु ह वा आत्मजान् स राजवर आग्नीध्रो

नाभिकिम्पुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्व-

केतुमालसं(ञ्)ज्ञान् नव पुत्रानजनयत् ॥ 19॥

तदनन्तर नृपवर आग्नीध्रने उसके गर्भसे नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल नामके नौ पुत्र उत्पन्न किये।

सा सूत्वाथ सुतान्नवानुवत्सरं(ङ्) गृह एवापहाय

पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं(न्) देवमुपतस्थे ॥ 20॥

इस प्रकार नौ वर्षमें प्रतिवर्ष एकके क्रमसे नौ पुत्र उत्पन्न कर पूर्वचित्ति उन्हें राजभवनमें ही छोड़कर फिर ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हो गयी।

आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव

सं(म)हननबलोपेताः(फ्) पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि

यथाभागं(ञ्) जम्बूद्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥ 21॥

ये आग्नीध्रके पुत्र माताके अनुग्रहसे स्वभावसे ही सुडौल और सबल शरीरवाले थे। आग्नीध्रने जम्बूद्वीपके विभाग करके उन्हींके समान नामवाले नौ वर्ष (भूखण्ड) बनाये और उन्हें एक-एक पुत्रको सौंप दिया। तब वे सब अपने-अपने वर्षका राज्य भोगने लगे ।

आग्नीध्रो राजातृप्तः(ख्) कामानामप्सरसमेवानुदिन-

मधिमन्यमानस्तस्याः(स्) सलोकतां(म्) श्रुतिभिरवारुन्ध

यत्र पितरो मादयन्ते ॥ 22॥

महाराज आग्नीध्र दिन-दिन भोगोंको भोगते रहनेपर भी उनसे अतृप्त ही रहे। वे उस अप्सराको ही परम पुरुषार्थ समझते थे। इसलिये उन्होंने वैदिक कर्मोंके द्वारा उसी लोकको प्राप्त किया, जहाँ पितृगण अपने सुकृतोंके अनुसार तरह-तरहके भोगोंमें मस्त रहते है।

सम्परेते पितरि नव भ्रातरो मेरुदुहितृर्मेरुदेवीं(म्) प्रतिरूपा-

मुग्रदं(म्)ष्ट्रीं(ल्ँ) लतां(म्) रम्यां(म्) श्यामां(न्) नारीं(म्)

भद्रां(न्) देववीतिमितिसं(ञ्)ज्ञा नवोदवहन् ॥ 23॥

पिताके परलोक सिधारनेपर नाभि आदि नौ भाइयोंने मेरुकी मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति नामकी नौ कन्याओंसे विवाह किया ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(म्)
पञ्चमस्कन्धे आग्नीध्रवर्णनं(न्) नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥